ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 77-79
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

न्यायिक निष्पक्षता की सीमाएँ

डॉ0 अरुण कुमार तिवारी
प्रोफेसर– राजनीति विज्ञान विभाग, मुनीश्वर दत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, प्रतापगढ़ (उ0प्र0), भारत

Received-12.04.2023, Revised-17.04.2023, Accepted-23.04.2023 E-mail: draktiwaripbh@gmail.com

***सारांशः** "किसी भी लोकतांत्रिक देश में न्यायपालिका और उसकी निष्पक्षता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। चूंकि सभी देशों की व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका के सदस्य किसी न किसी राजनीतिक दल के सदस्य होते हैं और उस दल के संगठन तथा विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं, इसलिए उनकी निष्पक्षता के प्रति जनता के मन में सदैव सन्देह का भाव रहता है। सामान्यतः व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं और पुनः चुनाव जीतने की आकांक्षा से काम करते हैं। इसलिए वोट बैंक तैयार करने की आकांक्षा के कारण शासन के दोनों अंग कुछ समुदायों, संगठनों और व्यक्तियों के प्रति पक्षपात पूर्ण व्यवहार और निर्णय करते रहते हैं, जबकि इसके विपरीत न्यायपालिका के सदस्य प्रत्यक्ष रूप से किसी भी राजनीतिक दल से न तो जुड़े होते हैं और नही किसी राजनीतिक गतिविधि में भाग लेते हैं। इसलिए न्यायपालिका की निष्पक्षता के प्रति जनता के मन में प्रायः सकारात्मक भाव रहता है।*

कुंजीभूत शब्द– लोकतांत्रिक देश, न्यायपालिका, न्यायिक निष्पक्षता, व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, राजनीतिक दल, विचारधारा।

यदि कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका के मनमानी निरंकुश और पक्षपापपूर्ण कार्यों से लोकतांत्रिक व्यवस्था को कोई खतरा पैदा हो जाता है तो यह न्यायपालिका ही होती है जो दोनों अंगों के गलत एवं पक्षपातपूर्ण कार्यों एवं निर्णयों को निरस्त कर जनता के मन में लोकतंत्र के प्रति आस्था बनाये रखने का कार्य करती है। निष्पक्ष न्यायपालिका किसी भी देश की व्यवस्था का केवल आइना ही नहीं होती, अपितु संविधान के संरक्षक की भूमिका का निर्वाह भी करती है। लार्ड ब्राइस ने न्यायपालिका की महत्ता का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "किसी भी षासन की श्रेष्ठता उसकी न्याय व्यवस्था की निपुणता पर निर्भर करती है, क्योंकि नागरिक सुरक्षा और हितों की रक्षा न्यायपालिका से ज्यादा अच्छे ढंग से कोई नहीं कर सकता। ..... यदि अंधेरे में न्याय का दीपक बुझ जाय तो वह अंधेरा कितना घना होगा।"[1]

न्यायपालिका की निष्पक्षता और स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ यह है कि न्यायाधीश न्याय करने और कानून तथा संविधान की व्याख्या करने के सम्बन्ध में स्वतंत्र रूप से अपने विवेक का प्रयोग करे और अपने कर्तव्य पालन में अनुचित रूप से प्रभावित न हों। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रश्नों पर वे किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त न हों। समाज के विभिन्न वर्गो एवं समुदायों के प्रति उनके मन में समान भाव हों और सबके प्रति समान सहानुभूति हो। वे पूरी तरह पूर्वाग्रहों से मुक्त हों। न्यायपालिका समुचित रूप से अपने कर्तव्यों का पालन तभी कर सकती है जब वह निष्पक्ष और स्वतन्त्र हो। "सभी मामलों में चाहे वह व्यक्ति एवं राज्य के बीच हो, चाहे वह अल्पमत एवं बहुमत के बीच में हो, चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से शक्तिशाली और निर्बल के बीच हो, न्यायापालिका को निष्पक्ष रहना चाहिए और बिना भय एवं पक्षपात के निर्णय देना चाहिए"।[2]

यदि हम विचार करें कि न्यायपालिका की पूर्ण निष्पक्षता के विषय में विद्वानों के जो मत हैं क्या वे पूरी तरह सही हैं ? क्या न्यायाधीश समाज के जिस वर्ग से सम्बन्धित होता है, उसके प्रति उसके मन में पक्षपात की भावना नहीं होती है ? क्या न्यायाधीश निर्णय देते समय अपने व्यक्तिगत, निजी विचारों एवं पूर्वाग्रहों से प्रभावित नहीं होता है ? क्या समाज के विभिन्न वर्गो के मध्य उत्पन्न होने वाले विवादों में न्यायपालिका नीर क्षीर विवेक एवं निरपेक्ष निष्पक्षता से काम करती है ? क्या न्यायाधीश महत्वपूर्ण विषयों पर निर्णय देते समय सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक प्रश्नों पर अपने निजी विचारों से प्रभावित नहीं होता है ? क्या सरकार के जन विरोधी कार्यो पर न्यायाधीश निष्पक्षता से रोक लगाने के लिए हर समय तत्पर दिखाई देते हैं ? आदि प्रष्नों पर विचार करके ही न्यायपालिका की निष्पक्षता की सीमा का आंकलन किया जा सकता है।

आर्थिक आधार पर समाज में अनेक वर्ग होते हैं जैसे– धनी, निर्धन, मजदूर एवं किसान आदि। धर्म एवं सम्प्रदाय के आधार पर भी समाज के लोग विभिन्न धर्मो में बंटे दिखाई देते हैं। भारत जैसे देष में लोग जाति के नाम पर भी बंटे हुए दिखाई देते हैं। न्यायाधीश भी किसी न किसी जाति, वर्ग एवं धर्म से जुड़ा होता है। वह किसी विशेष सामाजिक, धार्मिक परिवेश, परम्परा एवं रीति रिवाजों तथा प्रथाओं में पला बढ़ा होता है। न्यायाधीश की कुर्सी पर बैठते ही वह सभी बन्धनों से पूर्णतयः मुक्त हो जायेगा, इसकी कल्पना करना उचित प्रतीत नहीं होता है। इसी विशय पर एक प्रसिद्ध अमेरिकी न्यायाधीश वेंजामिन काडॉजों ने लिखा था कि, "हम सबमें एक प्रवृत्तिधारा होती है, उसे आप दर्शन कहें या न कहें, जो विचारों और क्रिया–कलापों को एक दिशा प्रदान करती है। न्यायाधीष भी अन्य प्राणियों की भाँति उस धारा से बच नहीं सकते हैं। सारी जिन्दगी ऐसी शक्तियाँ उसके साथ खींचतान करती रहती हैं। ये शक्तियाँ हैं विरासत में मिली मनोवृत्तियाँ, परम्परागत विश्वास एवं अर्जित आस्थाएँ। इनसे प्रभावित होकर ही न्यायधीश निष्पक्ष निर्णय देने का प्रयास करता है।"[3]

न्यायाधीशों के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक प्रश्नों पर अपना विचार होता है। जब वे उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश बन जाते हैं और सार्वजनिक महत्व के प्रश्नों पर निर्णय देते हैं तब उसमें उनकी सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विचारधारा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत के सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश पतंजलि शास्त्री ने भी कहा था कि यह अपरिहार्य है कि फैसले में भाग लेने वाले न्यायाधीशों के सामाजिक दर्शन और मूल्य सम्बन्धी मापदण्ड एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।[4]

उदारवादी लोकतंत्र में न्यायाधीश वर्गीय उत्पत्ति, वर्गीय स्थिति, शिक्षा और अपने पेषे की प्रवृत्ति की जगह से निर्णय करते समय

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

अमीरों एवं गरीबों के विवादों में निष्पक्ष नहीं रह पाते हैं। प्रायः न्यायाधीश समाज के उच्च श्रेणियों से आते है, अतः निर्णय करते समय सामान्यजन की समस्त कठिनाइयों से वे अवगत होकर फैसला देंगे इसकी सम्भावना कुछ कम ही लगती है। न्यायाधीश वर्गीय पक्षपात से मुक्त नहीं होते हैं। प्रो0 जे0ए0जी0 ग्रिफिथ ने अपनी पुस्तक 'द पालिटिक्स ऑफ जुडीशियरी' में कारण बताते हुए लिखा है कि न्यायाधीश इन्सान ही हैं और वर्गीय पक्षपात से परे नहीं हो सकते, इरादतन कभी नहीं बल्कि पक्षपात की तरफ अपने अवचेतन समर्पण से।[5] इंगलैण्ड के प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने एक बार कहा था कि "अपराधिक एवं सिविल मामलों में अदालतों मेरे विचार से अद्वितीय स्थान रखती हैं तथा सभी वर्गो के सम्मान और प्रशंसा की अधिकारी है। किन्तु जहाँ वर्गीय मुद्दे शामिल हैं, उन्हें यह विश्वास हासिल नहीं है और हमारी आबादी के बड़े हिस्से का विश्वास है कि निःसन्देह अवचेतन रूप से पक्षपाती है"।[6]

1908 में अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अमेरिकी कांगेस के नाम भेजे गये सन्देश में कहा था कि हमारे देश में मुख्य कानून निर्माता शायद न्यायाधीश हो सकते हैं और प्रायः होते भी है, क्योंकि सत्ता का अन्तिम पद उन्हीं पर है। हर बार जब वे अनुबन्ध, सम्पत्ति, निहित अधिकारों और स्वतन्त्रता की व्याख्या करते हैं तब वे आवश्यक रूप से सामाजिक दर्शन की एक व्यवस्था को कानून के अंगों के रूप में वैध बनाते हैं। चूंकि ऐसी व्याख्या मूलभूत होती है, अतः वे समस्त कानून निर्माण की प्रक्रिया को दिशा देते हैं। वहीं आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों पर न्यायालयों के फैसले न्यायाधीशों के आर्थिक और सामाजिक दर्शन पर निर्भर करते हैं।[7]

प्रसिद्ध राजनीतिक विचारक हेराल्ड जे0 लास्की ने भी यह माना है कि बीसवीं शताब्दी में भी न्यायाधीश निर्णय करते समय कुछ पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होते हैं। न्यायाधीश शेष मानव जाति से पृथक नहीं होते। वे जिस पीढ़ी में जन्म लेते हैं। उसके एक भाग होते है और उससे प्रभावित भी होते हैं। अपने युग की प्रमुख विचारधाराओं में उनका विश्वास होता है। न्यायाधीश ऐसा स्वतः चालित और उद्धेग रहित प्राणी नहीं है जो कानून की व्याख्या एवं विवेचना करते समय कुछ निश्चित अटल अर्थ प्राप्त कर लें।[8] निष्पक्षता का दिखावा करने के लिए यद्यपि न्यायाधीश राजनीतिक बहसों में अपना विचार प्रकट नहीं करते परन्तु उन पर उनका मन्तव्य अवश्य होता है। इस विषय को व्यक्त करते हुए लास्की ने लिखा है कि "यद्यपि परम्परा के अनुसार न्यायाधीश राजनीतिक विवादों में खुलकर भाग नहीं ले सकते, किन्तु इन वाद–विवादों की समस्याएं निर्णय के लिए उनके पास आती हैं। अतः यह आवश्यक है कि इन निर्णयों पर उनके विचार और दर्शन का प्रभाव पड़े। इनका निर्णय काफी हद तक उनके राजनीतिक दर्शन पर निर्भर करता है।"[9]

यदि हम उदारवादी लोकतांत्रिक देशों जैसे इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी एवं अमेरिका आदि के सर्वोच्च न्यायालयों के निर्णयों का अध्ययन करें तो स्पष्ट परिलक्षित होता है कि न्यायाधीश विचार धाराओं से प्रभावित होकर ही निर्णय करते हैं। जहाँ तक रूस एवं चीन जैसे देशों का सवाल है तो वहाँ न्यायालय वही निर्णय देते हैं जो शासन सत्ता चाहता है। पिछले कुछ दषकों से यह दिखाई दे रहा है कि सभी प्रकार की विचारधारा वाले देशों में न्यायपालिका भी राज्य का एक हथियार बनती जा रही है। अतः यहाँ न्यायालय शासन के अंगों की तरह ही कार्य करते हुए दिखाई देते हैं।

भारतीय संविधान निर्माता एक स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायपालिका के समर्थक थे। उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय को नागरिकों के मौलिक अधिकारों एवं संविधान का संरक्षक बताया। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने तो यहाँ तक कहा था कि न्यायपालिका लोकतंत्र की प्रहरी होगी। किन्तु संविधान निर्माता न्यायाधीशों की मानव जनित कमजोरियों से भी परिचित थे। शायद इसीलिए संविधान सभा में बोलते हुए डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने कहा था कि "मेरी अपनी धारणा है कि निःसन्हेह न्यायाधीश बहुत ही प्रसिद्ध न्यायविद होंगे फिर भी उनमें मनुष्यों की कमजोरियाँ, भावनाएँ और आग्रह होंगे"।[10] यदि हम भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का अध्ययन करें तो प्रायः यही पाते हैं कि व्यापारी, पूँजीपति एवं सरकार के पक्ष में ही अधिक फैसले हुए हैं। अपने अधिकतर फैसलों में न्यायालयों ने यह सिद्ध कर दिया है कि उसका काम पूंजीपतियों, नेताओं और सरकार के हितों की रक्षा करना है न कि मजदूरों, सरकारी कर्मचारियों तथा अन्य मेहनतकश वर्गो को न्याय दिलाना है। अक्टूबर 2020 से आरम्भ हुआ किसानों का आन्दोलन इसका प्रमाण है। सर्वोच्च न्यायालय ने इसको लेकर कृषक संगठनों को अनेक बार फटकार लगायी किन्तु कृषक विरोधी कानून पर कोई टिप्पणी तक नहीं की और एक आयोग गठित कर अपने कर्तव्यों को पूरा कर दिया। फिलहाल नये कृषि कानूनों पर अन्तरिम रोक लगा दी है।

पूँजी और श्रम के बीच के मामलों में न्यायालय पूँजी का पक्ष लेता है। सर्वोच्च न्यायालय हड़ताल के अधिकार पर अनेक बार हमले कर चुका है चाहे हड़ताल का कारण कितना भी उचित क्यों न हो जबकि दूसरी तरफ मिल मालिकों द्वारा तालाबन्दी करने पर मजदूरों के बेरोजगार होने पर चुप्पी साध लेता है। अनेक बार ऐसे अवसर आये हैं जब विभिन्न सरकारों द्वारा जाति, धर्म आदि से प्रभावित होकर लोगों को भ्रष्ट तरीके से नौकरियाँ दी गयी है। किन्तु मामला, न्यायालय में जाने पर भी कोई न्यायसंगत कार्यवाही नहीं की गयी। इसके विपरीत उदारीकरण के पूर्व के दशकों में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे निर्णय दिये हैं जो नागरिकों के हितों और उनके अधिकारों के लिए मील के पत्थर सिद्ध हुए हैं। ये ऐसे निर्णय रहे हैं जो किसानों, मजदूरों और सामान्य लोगों के अधिकारों को मजबूती प्रदान करते हैं।

1990 के बाद उदारीकरण का जो दौर भारत में शुरू हुआ उसके बाद न्यायालयों की निष्पक्षता का बदला यथार्थ सामने आता है। 1991 के बाद केन्द्र की विभिन्न सरकारों द्वारा संविधान की प्रस्तावना में लिखे गये समाजवाद तथा नीति निर्देशक तत्वों में वर्णित कल्याणकारी राज्य के प्रावधानों को नकार कर बाजार अर्थव्यवस्था की ओर कदम बढ़ाये। सार्वजनिक उद्यमों का विनिवेशीकरण करके उनको निजी पूंजीपतियों के हाथों में बेचा जा रहा हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को लाभ पहुँचाने के लिए कानून बनाये जा रहे हैं किन्तु न्यायालय मौन है। सरकार द्वारा मुनाफा कमाने वाली कम्पनियों के निजीकरण करने के निर्णय पर सर्वोच्च न्यायालय ने तकनीकी आधार पर हस्तक्षेप करने से इंकार कर दिया जो उसके षासन से प्रभावित होने के दृष्टिकोण को ही सिद्ध करता है। जिस धर्म निरपेक्षता की बात संविधान करता है उसका विभिन्न दलों द्वारा खुलेआम उल्लंघन किया जा रहा है। अनेक धर्मो के नाम पर जनता से मत मांगे जा रहे

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

हैं किन्तु न्यायालय इस पर भी रोक लगाने के लिए कोई आदेष देने को तत्पर दिखाई नहीं देती है।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ चाहती हैं कि श्रमिक कानून एवं कृषि कानून बदले जायँ जिससे विदेशी निवेश बढ़े। सरकार इसके लिए अनेक कदम उठा रही है। अपने ही देश के व्यापारी और छोटे उद्योगों का संचालन करने वाले लोग प्रताड़ित हो रहे हैं। किन्तु आज न्यायालय इस मामले में भी सरकार के पक्ष में खड़ी दिखाई देती है।

अन्ततः यह कहना उचित होगा कि विश्व के विभिन्न देशों की न्यायपालिकायें निष्पक्षता से कार्य करने का प्रयास करती हैं किन्तु मानव जनित कमजोरियों एवं कभी–कभी अपने विचार तथा हितों के लिए उसका उल्लंघन करती हुई दिखाई देती है। यह भी नहीं भूलना चाहिए कि न्यायपालिका सरकार का ही एक अंग है। अतः अन्य अंगों से प्रभावित होकर भी न्यायपालिका वर्गीय हितों के अनुसार कार्य करने लगती हैं। इसलिए न्यायिक निष्पक्षता के सामने अनेक सीमाएँ हैं। किन्तु हर समय न्यायालय निष्पक्षता से परे होगा, ऐसा भी नहीं है। विशेषतः 1990 के दशक से निष्पक्षता के सामने अनेक प्रश्न चिन्ह दिखाई दे रहे हैं। किन्तु ऐसा भारत ही नहीं विश्व के अनेक उदारवादी–पूँजीवादी देशों में दिखाई पड़ रहा है। आज न्यायालय सरकारों की पूंजीवादी नीतियों पर मुहर लगाने में कोई संकोच करती हुई दिखाई नही देती।

किसी भी प्रजातांत्रिक देश में न्यायालय और उसकी स्वतंत्रता तथा निष्पक्षता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। न्यायाधीश इसका पूरा निर्वाह करने का प्रयास भी करते हैं। किन्तु मनुष्य होने के कारण उनकी भी अपनी विचारधाराएँ होती हैं। जिसका प्रभाव उनके निर्णयों पर पड़ता है। न्यायाधीश कई बार वर्गीय हितों से प्रभावित होते हैं। वे अपने परिवेश, प्रथा एवं परम्परा से भी प्रभावित होकर निर्णय देते हैं। प्रसिद्ध राजनीति शास्त्री लास्की, ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल आदि ने भी स्वीकार किया है कि न्यायिक निष्पक्षता के मार्ग की अनेक सीमाएं है जिन्हें स्वीकार करना होगा। भारत जैसे देश में भी न्यायाधीश अनेक बार विचारधारा से प्रभावित होकर निर्णय देते हुए दिखाई देते हैं। इन सबके बावजूद न्यायाधीशों द्वारा अनेक ऐसे निर्णय दिये गये हैं जो न्याय व्यवस्था के लिए मील के पत्थर के समान हैं। हमें न्यायालयों की निष्पक्षता पर विश्वास करना चाहिए और हर संभव उनके निर्णयों का सम्मान करना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. लार्ड ब्राइस : 'Modern Democracies'- Vol.2', मैकमिलन एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 1921, पृष्ठ–384
2. विलोबी : 'The Government of Modern State', द सेन्चुरी कम्पनी, न्यूयार्क, 1919, पृष्ठ–433
3. एस0कुमार मंगलम : 'न्यायिक नियुक्तियाँ, पी0पी0एच0 प्रकाशन, नई दिल्ली, 1973, पृष्ठ–06
4. एस0कुमार मंगलम : वही, पृष्ठ–26
5. प्रो0जे0ए0जी0ग्रिफिथ : उद्भावना' अंक 65, जनवरी 2004, पृष्ठ–30
6. प्रो0 जे0ए0जी0 ग्रिफिथ : वही, पृष्ठ–30–31
7. एस0 कुमार मंगलम : वही, पृष्ठ–27
8. हेराल्ड जे0 लास्की : 'इग्लैण्ड का संसदीय शासन', एस0 चाँद एण्ड कम्पनी, नई (अनुवाद–विश्व प्रकाश) दिल्ली, 1968, पृष्ठ–225
9. हेराल्ड जे0 लास्की : वही, पृष्ठ–226
10. संविधान सभा के वाद–विवाद, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1994, खण्ड–VIII पृष्ठ–413

*****